प्रकाशन तिथि : 26 मार्च 2015, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 33, अंक 9, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

श्री दिगम्बर जैन महावीर परमागम मंदिर, विदिशा (म.प्र.) का प्रस्तावित चित्र
(दिनांक 1 से 6 अप्रैल 2015 तक होने वाले पंचकल्याणक के अवसर पर)

वीतराग-विज्ञान (381)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

फैक्स : 2704127

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	10200

आत्मप्राप्ति का विश्वास

आत्मप्राप्ति पुरुषार्थ से होती है। समयसार कलश-टीका में यत्नसाध्य नहीं है, काललब्धि से होती है - ऐसा कहा है वह तो अर्धपुद्गल परावर्तन काल शेष रहा हो तभी आत्मप्राप्ति होती है ऐसा सिद्धान्त है, यह बात वहाँ सिद्ध करना है। उसे विश्वास आ जाना चाहिये कि मेरा स्वकाल आ ही गया है। सब अवसर आ गया है ऐसा विश्वास आ जाना चाहिये। संसार में तो जो बात रुचती हो उसे तुरन्त करूँगा ऐसा कहता है। जो वस्तु उससे नहीं हो सकती उसे तुरन्त करने को कहता है, तब जो वस्तु अपनी ही है और अपने से हो सकती है वह तुरन्त क्यों नहीं होगी ? उसे विश्वास आ जाना चाहिये कि मैं तो तिरने के पंथ पर ही जा रहा हूँ, मुझे एकाध भव शेष है। जिसमें भव नहीं है - ऐसी दृष्टि में भव होते ही नहीं। 221

- द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ 51

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 33 (वीर नि. संवत् - 2541) 381 अंक : 9

नहिं ऐसा जनम बारम्बार...

नहिं ऐसा जनम बारम्बार।
कठिन- कठिन लह्यो मनुष भव, तजि मतिहार।।
पाय चिन्तामन रतन शठ, छिपत उदधि मंझार।
अंध हाथ बटेर आई, तजत ताहि गंवार।।
नहिं ऐसा जनम बारम्बार... ।।1।।
कबहुं नरक तिरयञ्च कबहुं, कबहुं सुरगविहार।
जगतमहिं चिरकाल भमियो, दुर्लभ नर अवतार।।
नहिं ऐसा जनम बारम्बार... ।।2।।
पाय अमृत पांय धोवै, कहत सुगुरु पुकार।
तजो विषय कषाय 'द्यानत', ज्यों लहो भवपार।।
नहिं ऐसा जनम बारम्बार... ।।3।।

- कविवर पण्डित द्यानतरायजी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर उनके प्रवचनों में से महत्वपूर्ण 125 अंशों को पाठकों के लाभार्थ यहाँ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(112) भगवान की प्रतिमा देखते ही 'अहो, ऐसे भगवान !' - इसप्रकार एक बार जो सर्वज्ञदेव के यथार्थस्वरूप को लक्षगत कर ले, तो भव से तेरा बेड़ा पार है। प्रात:काल भगवान के दर्शन द्वारा अपने इष्ट ध्येय को स्मरण करके बाद में ही श्रावक को दूसरी प्रवृत्ति करना चाहिए। भाई ! प्रात:काल उठते ही तुझे वीतराग भगवान की याद नहीं आती, धर्मात्मा सन्त मुनि याद नहीं आते और संसार के अखबार, धन्धा, व्यापार अथवा स्त्री आदि की याद आती है, तो तू ही विचार कर कि तेरी परिणति किस ओर जा रही है ?

(113) श्रावक प्रगाढ जिनभक्ति से जैनधर्म को शोभित करता है। शान्तदशा प्राप्त धर्मी जीव किसप्रकार के होते हैं और वीतरागी देव-गुरु के प्रति उनकी भक्ति का उल्लास कैसा होता है ? इसका भी जीवों को ज्ञान नहीं। इन्द्र जैसे भी भगवान के प्रति भक्ति से कहते हैं कि हे नाथ ! इस वैभव-विलास में रहा हुआ हमारा यह जीवन कोई जीवन नहीं, सच्चा जीवन तो आपका है - केवलज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्दमय जीवन से आप ही जी रहे हैं।

(114) अरे जीव ! सर्वज्ञ की ओर ज्ञान की प्रतीति बिना धर्म कैसे करेगा ? राग में स्थित रहकर सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं होती; राग से जुदा पड़कर, ज्ञानरूप होकर, सर्वज्ञ की प्रतीति होती है। इसप्रकार ज्ञानस्वभाव के लक्ष्यपूर्वक सर्वज्ञ की पहिचान करके उनके वचनानुसार धर्म की प्रवृत्ति होती है।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के जो वचन हैं, वे भी सर्वज्ञ अनुसार हैं; क्योंकि उसके हृदय में सर्वज्ञदेव विराज रहे हैं। जिसके हृदय में सर्वज्ञ न हो अर्थात् सर्वज्ञ को जो न मानता हो; उसके धर्म-वचन सच्चे नहीं होते हैं। इसप्रकार सर्वज्ञ की पहिचान धर्म का मूल है।

(115) मुनिराज तो संवर और निर्जरा के मूर्तिमान स्वरूप हैं। मुनिविरोध का अर्थ

है - संवर और निर्जरा तत्त्व की अस्वीकृति। जो सात तत्त्वों को भी न माने वह कैसा जैनी ? हमें तो उनके स्मरण मात्र से ही रोमांच हो आता है। ''णमो लोए सव्व साहूणं'' के रूप में हम तो सभी त्रिकालवर्ती मुनिराजों को प्रतिदिन सैंकड़ों बार नमस्कार करते हैं।

(116) हे जीव ! मोक्ष के साक्षात् कारण शुद्ध चारित्र को तू अङ्गीकार कर, सम्यग्दर्शन प्रगट करके ऐसी चारित्रदशा प्रगट कर। चारित्रदशा बिना मोक्ष नहीं है। क्षायिक सम्यक्त्व और तीन ज्ञान सहित तीर्थंकर भी जब शुद्धोपयोगरूप चारित्रदशा प्रगट करते हैं, तभी वे मुनिपना और केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। इसलिए सम्यग्दर्शन प्राप्त करके ऐसी चारित्रदशा प्रगट करना ही उत्तम मार्ग है।

(117) अरे ! तेरे भण्डार में आनन्द भरा है और तुझे खोलना नहीं आता। अन्तर में दृष्टि करके अपने अचिन्त्य वैभव को खोल। शक्ति में जो भरा है, उसे व्यक्त कर। प्राप्त की प्राप्ति होती है; अन्तर में जो भरा है, वही बाहर आता है। आनन्द का भण्डार कैसे खुले ? यह बात कुन्दकुन्दाचार्यादि दिगम्बर सन्तों ने प्रसिद्ध की है। यह अखण्ड चैतन्यकोठी अनन्त गुणों के भंडारों से भरी है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान द्वारा वह भंडार प्रगट होता है और बढकर पूर्ण होता है।

(118) अरे ! कहाँ मेरी चैतन्यविभूति और कहाँ यह इन्द्रपद इत्यादि बाह्य पुण्य के ठाठ। पुण्य तो चैतन्य की विकृति का फल है, इसमें मेरी महत्ता नहीं है; मेरी महत्ता तो मेरे चैतन्य की विशुद्धता में ही है। चैतन्य की महत्ता में जो अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र उछलता है, उसके समक्ष जगत के किसी भी फल की महत्ता ज्ञानी को नहीं है। ज्ञानी, चैतन्य की विभूति के समक्ष जगत की विभूति को धूल के समान समझकर, त्याग करके, चैतन्य की साधना करते हैं।

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे....)

अजीव द्रव्य

विगत अध्यायों में हुई जीव की चर्चा के उपरान्त अब अजीव तत्त्वार्थ की चर्चा आरंभ करते हैं।

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ।।१।।
द्रव्याणि ।।२।।
जीवाश्च ।।३।।
नित्यावस्थितान्यरूपाणि ।।४।।
रूपिणः पुद्गलाः ।।५।।

धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल – ये चार द्रव्य अजीव और कायवान् (बहुप्रदेशी) हैं; अजीवकाय हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल – ये सभी द्रव्य हैं।

जीव भी द्रव्य है।

उक्त द्रव्य नित्य हैं, अवस्थित हैं और अरूपी हैं।

पुद्गल द्रव्य रूपी है।

धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल – ये चार द्रव्य जीव से भिन्न होने से, जीवरूप न होने से अजीव हैं और बहुप्रदेशी होने से कायवान् हैं। इसप्रकार अजीवकाय हैं। यहाँ काय शब्द का भाव बहुप्रदेशी होना ही है।

धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल – ये चारों अजीव और काय होने के साथ-साथ द्रव्य भी हैं।

जीव भी द्रव्य हैं। यद्यपि जीव, अजीव द्रव्य नहीं हैं; तथापि जीव द्रव्य तो हैं ही।

जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाये जाते हैं, उस द्रव्य को रूपी कहते हैं। अभी कहे गये पाँच द्रव्यों में मात्र एक पुद्गल में ही स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाये जाते हैं; अतः एक मात्र वही रूपी है, शेष सभी द्रव्य अरूपी हैं।

यह अध्याय अजीव तत्त्वार्थ का निरूपण करनेवाला अध्याय है; इसलिए इसमें सर्वप्रथम अजीव द्रव्यों की चर्चा की गई है।

यद्यपि द्रव्य, छह प्रकार के हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल; तथापि यहाँ पहले सूत्र में धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल – इन चार द्रव्यों की बात आरंभ की है; क्योंकि यहाँ उन्हीं को लेना अभीष्ट था; जो अजीव हों और बहुप्रदेशी भी हों।

अजीव न होने से जीव की और बहुप्रदेशी न होने से कालद्रव्य की चर्चा यहाँ नहीं की; किन्तु जब दूसरे सूत्र में इनके द्रव्यपने की बात कही तो साथ में यह कहना अनिवार्य हो गया कि जीव भी द्रव्य है।

यद्यपि काल भी द्रव्य है, अजीव है, अजीवद्रव्य है; तथापि उसके बहुप्रदेशी न होने से यहाँ उसकी बात नहीं कही। आगे यथासमय ३९वें सूत्र में उसकी भी चर्चा करेंगे।

जब उक्त द्रव्यों को नित्य, अवस्थित और अरूपी कहा गया तो साथ में यह स्पष्ट करना भी आवश्यक हो गया कि पुद्गलद्रव्य रूपी है।।१-५।।

द्रव्यों की एवं उनके प्रदेशों की संख्या

अबतक पाँच द्रव्यों की चर्चा हुई। अब यह बताते हैं कि ये द्रव्य कितने-कितने हैं और उनके प्रदेश कितने-कितने हैं –

आ आकाशादेकद्रव्याणि ।।६।।
निष्क्रियाणि च ।।७।।
असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ।।८।।
आकाशस्यानन्ताः ।।९।।
संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ।।१०।।
नाणोः ।।११।।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य एक-एक हैं।

उक्त तीनों द्रव्य निष्क्रिय भी हैं।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एक जीवद्रव्य के असंख्यात प्रदेश हैं।

आकाश द्रव्य के अनन्त प्रदेश हैं।

पुद्गल द्रव्यों के संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश हैं।

अणु रूप पुद्गल द्रव्य के प्रदेश नहीं हैं।

धर्मद्रव्य एक है, अधर्मद्रव्य एक है और आकाशद्रव्य भी एक ही है।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य में क्षेत्र से क्षेत्रान्तररूप क्रिया नहीं होती। इन द्रव्यों का गमनागमन नहीं होता।

धर्मद्रव्य में असंख्यात प्रदेश होते हैं, अधर्मद्रव्य में असंख्यात प्रदेश होते हैं और एक जीवद्रव्य में भी असंख्यात प्रदेश होते हैं। तात्पर्य यह है कि उक्त तीनों के प्रदेशों की संख्या समान है।

लोकाकाश और अलोकाकाश – दोनों का मिला हुआ आकाश एक अखण्ड आकाशद्रव्य है। उक्त अखण्ड आकाशद्रव्य के अनन्त प्रदेश होते हैं।

लोकाकाश के प्रदेश असंख्य हैं।

पुद्गल द्रव्य मूलत: तो अणु ही है और वह एक प्रदेशी ही होता है। एक प्रदेशी पदार्थ को अप्रदेशी भी कहते हैं।

अनेक परमाणुओं के पिण्डरूप स्कंध को संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी भी कहा गया है।

इसप्रकार पुद्गल द्रव्य निश्चयनय से एक प्रदेशी या अप्रदेशी और व्यवहार नय से संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी है ।।६-११।।

द्रव्यों का अवगाह

अब यह बताते हैं कि ये द्रव्य रहते कहाँ हैं ?

लोकाकाशेऽवगाह: ।।१२।।
धर्माधर्मयो: कृत्स्ने ।।१३।।
एकप्रदेशादिषु भाज्य: पुद्गलानाम् ।।१४।।
असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ।।१५।।
प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ।।१६।।

उक्त धर्मादिक द्रव्यों का अवगाह (रहना) लोकाकाश में होता है।

धर्म और अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हैं।

पुद्गलों का अवगाह एक प्रदेश से लेकर असंख्यात प्रदेशों तक हो सकता है।

जीवों का अवगाह लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाश तक हो सकता है।

जिसप्रकार दीपक का प्रकाश कम-अधिक स्थान में बन जाता है; उसीप्रकार जीव के प्रदेशों का संकोच-विस्तार स्वभाव के कारण वह लोकाकाश के असंख्यातवें भाग आदि में बन जाता है।

आकाश के जिस भाग में सभी द्रव्य पाये जाते हैं; उस भाग को **लोकाकाश** कहते हैं। शेष भाग को **अलोकाकाश** कहते हैं। **अलोकाकाश में मात्र आकाश-आकाश ही है, अन्य कोई द्रव्य नहीं।**

इस सम्पूर्ण लोकाकाश में धर्म और अधर्म द्रव्य उसी तरह व्याप्त हैं, जिसतरह तिल में तेल व्याप्त रहता है।

ध्यान रहे, पुद्गल का प्रत्येक परमाणु स्वतंत्र परिपूर्ण द्रव्य है। अत: निश्चय से तो पुद्गल द्रव्य एकप्रदेशी ही है, अप्रदेशी है; वह भी अस्तिकाय नहीं है। **पुद्गल को तो स्कन्ध की अपेक्षा उपचार से बहुप्रदेशी या अस्तिकाय कहा जाता है।**

यदि पुद्गल का एक परमाणु अबद्ध अवस्था में है तो उसे रहने के लिए आकाश का एक प्रदेश चाहिए; क्योंकि एक प्रदेश से कम जगह में वह रह नहीं सकता और एक प्रदेश से अधिक जगह वह घेर नहीं सकता; किन्तु बद्ध या अबद्ध दो परमाणु आकाश के एक प्रदेश में भी रह सकते हैं और दो प्रदेशों को भी घेर सकते हैं। इसीप्रकार बद्ध या अबद्ध तीन परमाणु आकाश के एक प्रदेश में भी रह सकते हैं और दो या तीन प्रदेशों को भी घेर सकते हैं।

इसीप्रकार आगे बढ़ते जायें तो संख्यात बद्ध या अबद्ध परमाणु एक प्रदेश में भी बन सकते हैं और दो, तीन, चार...संख्यात प्रदेशों को भी घेर सकते हैं। इसीप्रकार असंख्यात और अनंत परमाणु भी एक प्रदेश से लेकर लोकाकाश प्रमाण क्षेत्र को घेर सकते हैं।

सूत्र में कहे गये एक प्रदेशादि से भाज्य का आशय यही है।

अब **असंख्येयभागादिषु जीवानाम् –** इस पर विचार करते हैं।

एक जीव लोक के असंख्यातवें भाग से लेकर संपूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हो सकता है। केवलिसमुद्घात के समय एक समय ऐसा आता है कि जब यह जीव लोकाकाश के सम्पूर्ण प्रदेशों में व्याप्त हो जाता है; क्योंकि एक जीव के भी उतने ही प्रदेश हैं, जितने लोकाकाश के हैं।

प्रश्न – यद्यपि एक जीव अधिक से अधिक तो सम्पूर्ण लोक को घेर सकता है, पर उसे रहने के लिए कम से कम कितना स्थान चाहिए ?

उत्तर – इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि कम से कम लोक का असंख्यातवाँ भाग तो चाहिए ही।

यहाँ एक प्रश्न यह भी संभव है कि लोक का असंख्यातवाँ भाग तो एक प्रदेश ही होगा; क्योंकि लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है ?

इसका उत्तर यह है कि असंख्यात भी तो असंख्यात प्रकार का होता है। असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश का असंख्यातवाँ भाग ऐसा भी हो सकता है कि जिसमें असंख्यात प्रदेश हों।

ध्यान रहे **जीव लोकाकाश के एक प्रदेश में नहीं बन सकता; उसे रहने के लिए असंख्य प्रदेश तो लगते ही हैं।**

एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि ऐसी स्थिति में असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश में असंख्यप्रदेशी अनन्त जीव कैसे रह सकते हैं और लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी जीव लोक के असंख्यातवें भाग आदि रूप शरीरों में कैसे रह सकता है ?

इन प्रश्नों का समाधान आचार्य पूज्यपाद अपने सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थ में इसप्रकार करते हैं –

''जीव दो प्रकार के हैं – सूक्ष्म और बादर, अत: उनका लोकाकाश में अवस्थान बन जाता है। जो बादर जीव हैं, उनका शरीर तो प्रतिघात सहित होता है; किन्तु जो सूक्ष्म हैं, यद्यपि वे सशरीर हैं तो भी सूक्ष् म होने के कारण एक निगोदिया जीव लोकाकाश के जितने प्रदेशों में अवगाहन करता है, उतने में साधारण शरीरवाले अनन्तानन्त जीव रह जाते हैं। वे परस्पर में और बादरों के साथ व्याघात को प्राप्त नहीं होते, इसलिए लोकाकाश में अनन्तानन्त जीवों के अवगाह में कोई विरोध नहीं आता।

पुन: शंकाकार का कहना है कि जब एक जीव के प्रदेश लोकाकाश के बराबर बतलाये हैं तो लोक के असंख्यातवें भाग में वह जीव कैसे रह सकता है, उसे तो सब लोक व्याप्त करके ही रहना चाहिए ?

इसी का समाधान करते हुए कहते हैं कि प्रदीप के समान जीव के प्रदेशों में संकोचविस्तार की शक्ति होने के कारण लोकाकाश के असंख्येय भागादिक में जीवों का अवगाह बन जाता है।[१]''

जिसप्रकार एक कमरे को एक दीपक अपने प्रकाश से भर देता है, उसी एक कमरे में अन्य अनेक दीपकों का प्रकाश भी समा जाता है। एक दीपक का प्रकाश पूरे

१. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय ५, सूत्र १५-१६ की टीका, पृष्ठ २१३

कमरे में भी व्याप्त होता है और उसे छोटी पेटी अथवा घड़े में रखा जाय तो उतने में भी सिमट सकता है। यह प्रकाश के सिकुड़ने और फैलने की शक्ति के कारण ही होता है। इसीप्रकार जीवों में संकोचविस्तार की असीम शक्ति है, इसकारण लोकाकाश के असंख्य प्रदेशों में असंख्य प्रदेशी अनेक जीव समा जाते हैं।।१२-१६।।

उपकार निर्देश

अब द्रव्यों के परस्पर उपकार का निर्देश किया जाता है –

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकार: ।।१७।।
आकाशस्यावगाह: ।।१८।।
शरीरवाङ्मन:प्राणापाना: पुद्गलानाम् ।।१९।।
सुखदु:खजीवितमरणोपग्रहाश्च ।।२०।।
परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।।२१।।
वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ।।२२।।

स्वयं चलते हुए जीव और पुद्गलों के गमन में निमित्त होना धर्मद्रव्य का उपकार है तथा गमनपूर्वक स्थिति में, ठहरने में निमित्त होना अधर्मद्रव्य का उपकार है।

सभी द्रव्यों को अवकाश देना, रहने का स्थान देना, सभी द्रव्यों के अवगाहन में निमित्त होना आकाश का उपकार है।

शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास में निमित्त होना जीवों के प्रति पुद्गलों का उपकार है।

इसीप्रकार सुख-दु:ख और जीवन-मरण में निमित्त होना पुद्गलों का जीवों के प्रति उपकार है।

लौकिक अनुकूलता-प्रतिकूलता में परस्पर में निमित्त होना – यह जीवों का परस्पर उपकार है।

वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व में निमित्त होना – ये कालद्रव्य का सभी द्रव्यों के प्रति उपकार हैं।

यद्यपि लोक में मुख्यरूप से उपकार शब्द का अर्थ भलाई करना ही माना जाता है; तथापि यहाँ इस प्रकरण में उपकार शब्द का अर्थ भलाई करना नहीं है; क्योंकि यहाँ **सुख के साथ दु:ख देने को और जीवन के साथ मरण को भी उपकारों में गिनाया गया है।**

जीवों के प्रति पुद्गल के उपकार गिनाते हुए मूल सूत्र में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा गया है कि **शरीर, वचन, मन तथा श्वासोच्छ्वास पुद्गल द्रव्य के उपकार हैं। साथ में सुख-दु:ख और जीवन-मरण भी जीवों के प्रति पुद्गल के उपकार हैं।**

अब आप ही बताइये कि दु:ख देने और मृत्यु प्राप्त कराने को भलाई कैसे माना जा सकता है?

शरीर पौद्गलिक है। शरीर का संयोग जीव के प्रति पुद्गल का उपकार है। शरीर तो हमारे लिये जेल है, बंधन है; कार्मण शरीर तो बंधन है ही, औदारिक आदि शरीर भी बंधन ही है।

कहा भी है –

''पाप-पुण्य मिल दोय पायन बेड़ी डारी।
तनकारागृह माँहि मोहि दियो दुखभारी।।[१]''

पापकर्म और पुण्यकर्म – इन दोनों कर्मों ने मेरे पैरों में बेड़ियाँ डाल कर मुझे शरीररूपी जेल में कैद कर भारी दु:ख दिये हैं।

यहाँ यह कहा गया है कि पाप के उदय से प्राप्त होनेवाले प्रतिकूल तन-वचन का संयोग और पुण्य के उदय से प्राप्त होनेवाले अनुकूल तन-वचन का संयोग – दोनों बेड़ियाँ हैं, तन तो कारागृह (जेल) ही है – ये सभी पुद्गल द्रव्य के जीव के प्रति उपकार हैं। इनमें अकेली भलाई की बात कहाँ है ? **यहाँ भलाई-बुराई – दोनों को ही पुद्गल द्रव्य के उपकार बताया गया है।**

अरे, भाई ! गंभीरता से विचार करो कि देह का बंधन उपकार है या अपकार?

आप कह सकते हैं कि यह मानवदेह तो उपकार ही है, पर भाई ! नारकियों और तिर्यंचों का शरीर भी तो शरीर ही है, निगोदिया का शरीर भी तो शरीर ही है। यहाँ तो सभी के शरीरों को पुद्गल द्रव्य का उपकार बताया गया है।

अरे, भाई ! **यहाँ कहे गये उपकार शब्द से तो भले-बुरे सभी शरीरों को उपकारी बताया जा रहा है। यहाँ उपकारों में उपकार के साथ अपकार भी शामिल हैं।**

समयसारादि अनेक ग्रंथों के भाषा टीकाकार पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा इन्हीं सूत्रों की व्याख्या करते हुए सर्वार्थसिद्धि वचनिका में उपकार शब्द का अर्थ इसप्रकार

१. कविवर भूधरदास : देवस्तुति, बृहज्जिनवाणी संग्रह, पृष्ठ ७५

करते हैं –

''उपकार शब्द का अर्थ भला करना नहीं लेना, कछु कार्य को निमित्त होय, तिसको उपकारी कहिये है।''

पण्डित कैलाशचन्दजी उपकार शब्द का अर्थ इसप्रकार करते हैं–

''यहाँ उपकार का मतलब केवल भलाई नहीं लेना चाहिए, बल्कि किसी भी कार्य में सहायक होना उपकार है।[१]''

रामजीभाई उपकार शब्द का अर्थ इसप्रकार करते हैं –

''उपकार (उपग्रह) शब्द का अर्थ किसी का भला करना नहीं; किन्तु निमित्त मात्र ही समझना चाहिए; नहीं तो यह नहीं कहा जा सकता कि 'जीवों को दु:ख, मरणादि के उपकार' पुद्गल द्रव्य के हैं।[२]''

यद्यपि लगभग सभी लोगों ने यही स्वीकार किया है कि यहाँ उपकार शब्द का अर्थ मात्र निमित्त होना ही है; तथापि समझाने के लिए जो उदाहरण दिये हैं; वे सब भलाई संबंधी ही दिये हैं।

इसकारण उपकार के अर्थ के संबंध में लोगों की बुद्धि में पहले से ही जमी हुई भलाईवाली मान्यता पुष्ट होती रहती है।

वस्तुत: बात ऐसी है कि जिसप्रकार राष्ट्रपति-उपराष्ट्रपति, सभापति-उपसभापति, अध्यक्ष-उपाध्यक्ष, मंत्री-उपमंत्री होते हैं; उसीप्रकार कारक और उपकारक भी होते हैं।

उप विशेषण का प्रयोग समीपता के अर्थ में होता है। जैसे नगर और उपनगर। जो नगर के समीप स्थित हो उसे उपनगर कहते हैं। जयपुर एक नगर है और बापूनगर उसका उपनगर है।

इसीप्रकार **प्रत्येक कार्य का कारक उपादान होता है और उपकारक निमित्त।**

कार्य अच्छा हो या बुरा, अपने लिए अनुकूल हो या प्रतिकूल; उस कार्य के कारक तो हम स्वयं हैं और उपकारक (निमित्त) कोई न कोई परद्रव्य होगा। तात्पर्य यह है कि **प्रत्येक द्रव्य स्वयं में होनेवाले कार्य का कारक है और कोई न कोई परद्रव्य निमित्तरूप से उसका उपकारक है। उपकारक का अर्थ उपकार करनेवाला नहीं, अपितु निमित्तरूप गौण कारक है।**

भैया भगवतीदासजी लिखते हैं –

१. तत्त्वार्थसूत्र, सूत्र २० की टीका, पृष्ठ ८१
२. मोक्षशास्त्र, सूत्र २० की टीका, पृष्ठ ३४०

उपादान निज गुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।

प्रत्येक कार्य का उपादानरूप स्वद्रव्य निश्चय कारक (कर्त्ता-करण) है और परद्रव्यरूप निमित्त उपकारक है, उपचार कारक है, व्यवहार कारक है, मात्र कहने का कारक है।

इसतरह यहाँ जितने उपकारक या उपकार गिनाये हैं; उन सभी का अर्थ भलाई ही नहीं है, बुराई भी हो सकता है। इस बात का ध्यान रखना बहुत जरूरी है।

आकाश द्रव्य ने सभी द्रव्यों को अवकाश देकर, धर्मद्रव्य ने स्वयं चलते हुए जीव-पुद्गलों के गमन करने में निमित्त होकर तथा अधर्म द्रव्य ने गमन करते हुए जीव-पुद्गलों को स्वयं स्थित होने में निमित्त बनकर किसी का क्या उपकार (भला) किया है ?

अरे, भाई ! उन द्रव्यों का तो यह सहज स्वभाव है।

इसीप्रकार सभी द्रव्य स्वयं परिणमनशील हैं, परिणमन करना उनका सहज स्वभाव है; उस परिणमन में निमित्त बनकर कालद्रव्य ने उनकी क्या भलाई की है? क्योंकि जिसका जो भी भला-बुरा हो रहा है, सभी में कालद्रव्य निमित्त है। इसीप्रकार अकेले स्वर्ग में नहीं, नरक में रहने में भी तो आकाशद्रव्य निमित्त (उपकारक) है। अकेले मोक्ष में नहीं, नरक में जाने में भी तो धर्मद्रव्य निमित्त (उपकारक) है।

इसप्रकार यह सुनिश्चित हुआ कि ये जीव और पुद्गल अपनी स्वयं की पर्यायगत योग्यता से चाहे नरक, चाहे स्वर्ग, चाहे निगोद, चाहे मोक्ष – सर्वत्र, धर्मद्रव्य जाने में; आकाशद्रव्य रहने में, अधर्मद्रव्य गमन पूर्वक स्थिति में, ठहरने में और कालद्रव्य परिणमन में निमित्त होंगे ही; इसी को ये सूत्र उनका उपकार कहते हैं।

इसीप्रकार जीव भी परस्पर चाहे एक-दूसरे का सहयोग करें या आपस में लड़े-मरें– ये सूत्र तो दोनों को उपकार ही कहेंगे। समझ लीजिए इसमें सबकुछ आ गया है।

यदि हम ऐसा अर्थ समझेंगे तो फिर उपकार शब्द का सही भाव हमारे ध्यान में आवेगा।

बिना समझे-बूझे ही हमने इसे अपना मोटो बना लिया है। लगभग सभी लोग इसतरह बात करते हैं कि जैसे **परस्परोग्रहो जीवानाम्** – यह सूत्र हमें ऐसा आदेश दे रहा है कि हमें एक-दूसरे के काम आना चाहिए।

अरे, भाई ! हमारे लिए तो संबंधित सभी परजीव चेतन परिग्रह हैं और शरीरादि अचेतन परिग्रह हैं। जैनदर्शन में तो परिग्रहरूप इन पदार्थों के प्रति

एकत्व-ममत्व एवं राग-द्वेष को त्याग करने योग्य कहा है।

उक्त कथन का निष्कर्ष यह है कि इस उपकारों के प्रकरण में **'उपकार' पद का अर्थ भलाई करना नहीं, मात्र निमित्त होना है।**

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि फिर हमें किसी का उपकार करना चाहिए या नहीं?

अरे, भाई ! यहाँ तो मात्र निमित्त-नैमित्तिक संबंध का ज्ञान कराना प्रयोजन है, करने-कराने का नहीं।

जहाँ जिस अपेक्षा जो बात कही हो, वहाँ वही समझना समझदारी है।

जब निश्चय से कोई किसी का कुछ कर ही नहीं सकता; तब हमें किसी का कुछ करना चाहिए या नहीं – यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

यद्यपि निश्चय से उक्त कथन परम सत्य है, तथापि **ज्ञानी धर्मात्माओं में भी अन्य का भला करने का भाव आये बिना नहीं रहता।** यही कारण है कि व्यवहार से किसी का बुरा नहीं करने और भला करने का उपदेश दिया जाता है।।१७-२२।।

(क्रमशः)

अब... डॉ. भारिल्ल जिनवाणी चैनल पर

जिनवाणी JINVANI
सुख, शान्ति, समृद्धि

जयपुर (राज.) : अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के मर्मस्पर्शी प्रवचन अब जिनवाणी चैनल पर प्रातः 7.00 से 7.30 बजे तक नियमित दिखाये जायेंगे। यह क्रम एक वर्ष तक नियमित चलेगा। स्मरणीय है कि इसके पूर्व अहिंसा चैनल, साधना चैनल व जी-जागरण चैनल पर विगत 10 वर्षों से आपके नियमित प्रवचन प्रसारित किये जाते रहे हैं।

– अखिल बंसल,
महामंत्री-अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद्

छहढाला प्रवचन

सम्यग्ज्ञान के प्रकारों का वर्णन

तास भेद दो हैं परोछ परतछि तिन माँही।
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मनतें उपजाहीं।।
अवधि ज्ञान मनपर्जय दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये जाने जिय स्वच्छा।।३।।
सकल द्रव्य के गुन अनन्त पर्याय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रकट केवलि भगवन्ता।।४।।पूर्वार्ध।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

सम्यग्दर्शन सहित जो सम्यग्ज्ञान होता है, उसके दो भेद हैं - एक परोक्ष, दूसरा प्रत्यक्ष।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनों इन्द्रियों तथा मन द्वारा उत्पन्न होते हैं, अत: परोक्ष हैं। अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान ये दोनों एकदेश प्रत्यक्ष हैं। उनके द्वारा जीव मर्यादित द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को इन्द्रिय और मन के अवलम्बन बिना प्रत्यक्ष-स्पष्ट जानता है। केवलज्ञान सम्पूर्ण प्रत्यक्ष है, केवली भगवन्त समस्त द्रव्यों के अनन्त गुणों को तथा अनन्य पर्यायों को एकसाथ प्रत्यक्ष जानते हैं। जानने में कोई द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादा नहीं है। अहो ! यह केवलज्ञान की अद्भुत अचिन्त्य महिमा है। इसकी पहिचान करते ही जीव को ज्ञान स्वभाव की प्रतीति, सहज अतीन्द्रिय सुख के वेदन से भरपूर सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है। प्रवचनसार में आचार्यदेव ने उसकी बहुत महिमा गाई है। अरे ! केवलज्ञान की महिमा की तो बात क्या, चौथे गुणस्थान का जो सम्यग्ज्ञान मति-श्रुतरूप है, उसकी भी अपूर्व महिमा है, वह परमानन्दमय अमृत है और मोक्ष का साधक है।

सम्यग्दृष्टि जीव को सम्यग्दर्शन के साथ वर्तते सम्यग्ज्ञान की चर्चा चल रही

है। पर को जाननेवाले मति-श्रुत ज्ञान में इन्द्रिय-मन का अवलम्बन है; किन्तु मति-श्रुत ज्ञान जब आत्मा के सन्मुख होकर निर्विकल्प स्वसंवेदन करता है, तब उसमें मन या इन्द्रियों का आलम्बन नहीं रहता, उतने अंश में स्वसंवेदन में वह भी प्रत्यक्ष है। तत्त्वार्थसूत्र आदि में जहाँ मति-श्रुतज्ञान को सामान्यपने परोक्ष कहा है, उसमें इतना विशेष समझना कि निर्विकल्प अनुभव दशा में तो वे ज्ञान स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हैं, अतीन्द्रिय हैं, मन तथा इन्द्रियों के अवलम्बन रहित हैं। ऐसा अतीन्द्रियज्ञान गृहस्थ को भी होता है। हाँ, ज्ञान में सन्मुख होकर निर्विकल्प संवेदन का काल थोड़ा ही होता है, इसलिए उसकी बात मुख्य न करके सामान्य वर्णन में मति-श्रुत ज्ञान को परोक्ष कहा गया है।

ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय के भेद के विकल्प रहित होकर जब आत्मा स्वयं अपने स्वरूप का ही अनुभव करता है-जानता है, तब उसको प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान है। सम्यग्दर्शन होते ही सम्यग्ज्ञान में ऐसा अतीन्द्रियपना हुआ, तब वह सम्यक् हुआ, वह ज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन सहित है। इसके अतिरिक्त समय में मति-श्रुत ज्ञान परोक्ष हैं। जिसमें इन्द्रियों का निमित्त हो उस ज्ञान में तो इन्द्रियों के विषयभूत रूपी पदार्थ ही ज्ञात होते हैं, किन्तु अरूपी आत्मा उससे ज्ञात नहीं होता। भगवान चैतन्यसूर्य स्वयं अपने को प्रकाशे उसमें जड़ इन्द्रियों का निमित्त कैसा ? अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप अमृत-वस्तु प्रत्यक्ष ज्ञात है, वह स्वयं इन्द्रिय ज्ञान से नहीं जानता, उसीप्रकार इन्द्रिय ज्ञान से वह जानने में नहीं आता। मन के अवलम्बन से भी वह जानने में नहीं आता। मन के अवलम्बन से तो स्थूल परवस्तु परोक्ष जानी जाती है।

आँख द्वारा शरीरादि का रूप दिखता है, परन्तु आत्मा दिखाई नहीं देता। ज्ञान, रागादि से छूटकर, अन्तर्मुख होकर जब स्वयंपने को पकड़ता है, तब शान्ति का वेदन होता है। उस अतीन्द्रिय शान्ति को वेदनकाल में सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को चौथे गुणस्थान में भी ज्ञान अतीन्द्रिय है, इसलिए प्रत्यक्ष है। स्व तरफ झुका हुआ ज्ञान मात्र आत्म-सापेक्ष होने से प्रत्यक्ष है, उसमें अन्य किसी का अवलम्बन नहीं है - ऐसे अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द से मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है।

प्रश्न - आप कहते हैं कि आत्मा को देखो। अब आँख से तो आत्मा दिखता नहीं और आँख मींचने पर अन्दर अंधेरा अंधेरा लगता है, तो आत्मा को

किसप्रकार देखें।

उत्तर – भाई, इन्द्रिय ज्ञान से आत्मा नहीं दिखेगा, अतीन्द्रिय ज्ञान से ही आत्मा दिखेगा। आँख मीचो तब भी 'यह अंधेरा है और जो अंधेरा है वह मैं नहीं' – ऐसा जाना किसने ? आत्मा ने या किसी अन्य ने ? अंधेरे को जाननेवाला स्वयं कहीं अन्धा नहीं है, वह तो जागृत चैतन्य सत्ता है और वही आत्मा है। पहले चैतन्य वस्तु कैसी है, यह लक्ष्यगत होना चाहिए, पश्चात् उसका रस और अत्यन्त महिमा आने पर, परिणाम उसमें एकाग्र हों, तब अनुभव में उसका साक्षात्कार होता है। 'यह अंधेरा है' इसप्रकार अंधेरे को देखा किसने ? अंधेरा स्वयं अपने को तो देखता नहीं, किन्तु चैतन्य सत्ता देखती है कि यह अंधेरा है और मैं उसको जाननेवाली हूँ। अंधेरे को जाननेवाला 'मैं अंधेरा हूँ' ऐसा नहीं जानता, किन्तु 'यह अंधेरा है' ऐसा जानता है अर्थात् अंधेरे को जाननेवाले अंधेरे से भिन्न है। बस ! यह जाननेवाला तत्त्व ही आत्मा है और अन्तर्मुख मति-श्रुत ज्ञान से ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा को जान सकते हैं। आँख आदि से आत्मा को नहीं जान सकते। भाई, जिस चैतन्य तत्त्व में यह सब जाना जाता है, वही तो तू है, उसको अन्दर विचार में ले। अनादि से स्वयं अपनी चैतन्य सत्ता का विचार नहीं किया। जाननेवाला स्वयं 'मैं हूँ' इसप्रकार जाननेवाला अपने अस्तित्व को ही न माने – यह आश्चर्य है।

हे जीव ! ज्ञान तो तेरा स्वरूप है और अंधेरा पर है। अंधकार और प्रकाश ये दोनों पर्यायें पुद्गल की हैं, उनको जाननेवाला अरूपी ज्ञान आत्मा का है। ऐसे आत्मा का निर्णय करने के लिए अन्दर उद्यम करना चाहिए। तू बाहर में दस पांच लाख रुपया प्राप्त करने के लिए कितना परिश्रम प्रेम से करता है। घर-बार छोड़कर खाने-पीने की कठिनाई सहन करके भी परदेश में पैसा कमाने जाता है और दिन-रात मजदूरी करता है। तो यह अनादि-अनन्त महान सुखदाता अपनी अद्भुत ज्ञान लक्ष्मी कैसी है ? उसको प्राप्त करने और उसका अनुभव करने के लिए अन्तर में कितने प्रेम से उद्यम करना चाहिए ? बापू ! तेरी सच्ची लक्ष्मी तो यह सम्यग्ज्ञान है कि जो परम सुख देनेवाला है, अन्य पैसा आदि तो धूल-रजकण है, वह तेरी लक्ष्मी नहीं और उनमें से कभी तुझे सुख मिलनेवाला भी नहीं है।

ज्ञान का स्वभाव प्रत्यक्ष अर्थात् अकेले आत्मा से जानने का है, जानने में पर

का अवलंबन ले – ऐसा उनका स्वभाव नहीं है। आँख से दृष्टिगोचर हो वह प्रत्यक्ष – यह व्याख्या सच्ची नहीं है। आँख बिना अकेले आत्मा से सीधा जो ज्ञान हो, वह प्रत्यक्ष है और आँख आदि पर की अपेक्षा सहित जो ज्ञान हो, वह तो परोक्ष है। प्रत्यक्ष ज्ञान में पर का अवलम्बन नहीं होता। अरे, जानने का स्वभाव अपना है, फिर उसमें पर के आलम्बन की पराधीनता कैसी ? परालम्बी परोक्ष ज्ञान से आत्मा ज्ञात नहीं होता। इन्द्रियातीत और राग से पार ऐसे स्वाधीन अतीन्द्रिय ज्ञान से आत्मा ज्ञात होता है। स्वाधीन कहो, अतीन्द्रिय कहो, प्रत्यक्ष कहो – वह ज्ञान स्पष्ट है, उसका प्रारम्भ चौथे गुणस्थान से हो जाता है। चौथे गुणस्थान में स्वानुभूति में सम्यक् मति-श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष होता है, उसमें इन्द्रियाँ और मन निमित्त नहीं हैं। ऐसा स्वानुभव-प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान आठ वर्ष की बालिका को भी होता है। उस सम्यग्दृष्टि बालिका को अन्तर में ध्यान के काल में अपने ज्ञानानन्दमय आत्मा का वेदन, राग और इन्द्रियों की अपेक्षा बिना होता है, उस समय होनेवाले ज्ञान को अध्यात्म शैली में प्रत्यक्ष कहा जाता है। जब वह ध्यान में हो, तब स्वानुभव में स्वयं अपने आत्मा को तन्मय होकर जानता है, तब बाहर में समस्त पर का लक्ष्य छूट जाता है। इसप्रकार ज्ञान स्वयं अपने में एकाग्र होकर अतीन्द्रियपने आनन्दरस की धारा उल्लसित होती है। सिंह आदि पशुओं में भी जो जीव सम्यग्दृष्टि हों, उन्हें ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट होता है। तीर्थंकर परमात्मा के समवशरण में सिंह, हिरण, हाथी, खरगोश आदि पशु भी आते हैं और उनमें से अनेक जीव ऐसे आत्मा का स्वरूप पहिचान कर प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान से उसका अनुभव करते हैं। महावीर भगवान के आत्मा ने सिंह पर्याय में ऐसा अनुभव किया था और पार्श्वनाथ भगवान की आत्मा ने हाथी की पर्याय में ऐसा अनुभव किया था। उस सिंह और हाथी को भी ऐसा प्रत्यक्ष-अतीन्द्रियज्ञान था। आज भी इस मध्यलोक में असंख्य पशु ऐसे आत्मज्ञान सहित वर्तते हैं, मनुष्य भी करोड़ों अरबों हैं।

आहाहा ! सम्यग्ज्ञान की शक्ति तो देखो, भाई ! ऐसा ज्ञानस्वरूप आत्मा तू स्वयं है। यह शरीर या राग तू नहीं है, अन्दर आनन्दमय ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वही तू है। ऐसे आत्मा का ज्ञान करने का यह अवसर है। लंका के रावण के मुख्य हाथी 'त्रिलोकमंडन' जिसे रामचन्द्रजी अपने साथ अयोध्या लाये थे, उसको भी ऐसा

आत्मज्ञान हुआ था तथा पूर्वभव का जातिस्मरण ज्ञान भी हुआ था। यह भी आत्मा है न ? इसमें भी ज्ञान शक्ति भरी है, उसे स्वयं स्व-संवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में लेकर उसने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रकट किया था।

यह सम्यग्ज्ञान का प्रकरण चल रहा है। सम्यक् मति-श्रुत ज्ञान स्व-संवेदन काल में प्रत्यक्ष है और शेष काल में परोक्ष है। अवधि और मन:पर्ययज्ञान एकदेश प्रत्यक्ष हैं, वे इन्द्रियों और मन के निमित्त बिना अमुक मर्यादित क्षेत्र में रहनेवाले अमुक ही पदार्थों को, उनके अमुक ही काल और अमुक भावों को ही जानते हैं अर्थात् वे अधूरे हैं। जितना वे जानते हैं, उतना तो प्रत्यक्ष जानते हैं; किन्तु अधूरा जानते हैं, इसलिए उन्हें देश प्रत्यक्ष कहते हैं। श्रुतज्ञान में तो सभी पदार्थों को परोक्ष जानने की शक्ति है – ऐसा कहा है। श्रुतज्ञान में विशेष शक्ति है और केवलज्ञान तो अद्भुत अचिन्त्य महिमावाला सम्पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान है।

सम्यक् मति-श्रुत ज्ञान सभी सम्यग्दृष्टि साधक जीवों को होता है, अवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं जीवों को होता है। उनमें देशावधि चारों गतियों में होता है, नरक और स्वर्ग में तो सभी सम्यग्दृष्टि जीवों को होता है और तिर्यंच तथा मनुष्य में किसी-किसी जीव को होता है। विशेष अवधिज्ञान (परमावधि तथा सर्वावधि) तो किसी विशेष मुनि को ही होता है। कुअवधिरूप विभंगज्ञान तो देव-नारकी में सभी जीवों को होता है, बहुत से तिर्यंच और मनुष्य भी अवधिज्ञान से अनेक द्वीप-समुद्रों को जान सकते हैं, परन्तु मोक्षमार्ग में उसका कोई मूल्य नहीं है, वह वीतराग-विज्ञान नहीं है। सामान्य बैल आदि प्राणी भी ज्ञान के कुछ उघाड़ से सामने वाले के मन की बात को समझ लेते हैं, वहाँ अज्ञानियों को आश्चर्य उत्पन्न होता है; किन्तु अतीन्द्रिय केवलज्ञान के अद्भुत अचिन्त्य सामर्थ्य की उन्हें खबर नहीं है। अरे ! सम्यग्दृष्टि के स्व-संवेदन में अतीन्द्रिय मति-श्रुत ज्ञान की कोई अपार शक्ति है, उसकी भी खबर नहीं। ज्ञान तो किसे कहा जाय ? जो राग से पार होकर आनन्दरस में मग्न हुआ हो – ऐसा ज्ञान ही ज्ञान है, वह वीतराग-विज्ञान है, वही मोक्ष का कारण है। मन:पर्यय ज्ञान भी किसी विशिष्ट ऋद्धिधारी मुनि के ही होता है। केवलज्ञानरूप महा प्रत्यक्ष ज्ञान सर्व अरहन्त और सिद्ध भगवन्तों को होता है – इसप्रकार पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान जानकर उसकी आराधना करो।

(क्रमश:)

नियमसार प्रवचन –

ईर्यासमिति का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 81वें छंद पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

छंद मूलत: इसप्रकार है –

(मंदाक्रांता)

इत्थं बुद्ध्वा परमसमितिं मुक्तिकान्तासखीं यो।
मुक्त्वा संगं भवभयकरं हेमरामात्मकं च।
स्थित्वाऽपूर्वे सहजविलसच्चिच्चमत्कारमात्रे
भेदाभावे समयति च स: सर्वदा मुक्त एव ।।८१ ।।

(हरिगीत)

मुक्तिकान्ता की सखी जो समिति उसको जानकर।
जो संत कंचन-कामिनी के संग को परित्याग कर ।।
चैतन्य में ही रमण करते नित्य निर्मल भाव से।
विलग जग से निजविहारी मुक्त ही हैं संत वे।८१।।

इसप्रकार मुक्तिकान्ता की (मुक्तिसुन्दरी की) सखी परमसमिति को जानकर जो जीव भवभय के करनेवाले कंचनकामिनी के संग को छोड़कर, अपूर्व, सहज-विलसत से (स्वभाव से प्रकाशते), अभेद चैतन्यचमत्कारमात्र में स्थित रहकर (उसमें) सम्यक् ''इति'' (गति) करते हैं अर्थात् सम्यक्रूप से परिणमित होते हैं वे सर्वदा मुक्त ही हैं।

(गतांक से आगे....)

यहाँ ईर्यासमिति की बात है। ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और स्वरूप-रमणतारूपी स्थिरता में – वीतराग मार्ग में झूलते मुनि की सहजदशा की बात है।

जूड़ाप्रमाण देखकर चलना व्यवहार से कथन है। वास्तव में आत्मा शरीर की क्रिया नहीं कर सकता। जहाँ आत्मा का सच्चा ज्ञान और अन्तर रमणता विशेष प्रकट हो गई हो – मुनिदशा प्रकट हो गई हो, वहाँ शुभराग/विकल्प सहज किस प्रकार होता है और शरीर की क्रिया शरीर के कारण कैसी होती है, उसका ज्ञान कराया है।

सचमुच तो आत्मा के स्वभाव में देखकर चलना अर्थात् आत्मा का सच्चा ज्ञान करके अन्तःस्वरूप में चलना अर्थात् परिणमन करना वही सच्ची समिति है। बाहर देखकर चलने का भाव व्यवहार है – शुभराग है।

प्रश्न : अन्तरस्वरूप में परिणमने को समिति कहा, तो समिति और गुप्ति में क्या अन्तर है?

उत्तर :– दोनों में एक ही बात है। आत्मा के शुद्ध वीतरागीस्वरूप में प्रवर्तन करना, अन्तर वीतरागीरमणता, अन्तर एकाग्रता करना ही निश्चयसमिति है। निश्चयपरमसमिति को जानकर जो जीव भवभय के करने वाले कंचन व कामिनि के संग को त्यागकर अपूर्व सहज विलसते अभेद चैतन्यचमत्कार में स्थित रहकर उसमें सम्यक् 'इति' (गति) करते हैं अर्थात् सम्यक्रूप से परिणमते हैं, वे सदा मुक्त ही हैं।

कंचन और कामिनी का संग भवभयकारक कहा, यह निमित्त का कथन है। स्वयं उसके प्रेम में आसक्त होने से ही संसार में भटकना होता है। जो शुभाशुभ विकार से रहित है – ऐसे अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप सहज विलसते चैतन्यचमत्कार में सम्यक् 'इति' – गमन, परिणमन, रमणता करना ही समिति है।

जो जीव अभेदचैतन्य में स्थिर होकर परिणमन करता है, उसको मुक्तदशा का कारण कहकर सर्वदा मुक्त ही कहते हैं।

(मालिनी)

जयति समितिरेषां शीलमूलं मुनीनां
त्रसहतिपरिदूरा स्थावराणां हतेर्वा।
भवदवपरितापक्लेशजीमूतमाला
सकलसुकृतसीत्यानीकसन्तोषदायी ।।८२।।

(हरिगीत)

जयवंत है यह समिति जो त्रस और थावर घात से।
संसारदावानल भयंकर क्लेश से अतिदूर है।।
मुनिजनों के शील की है मूल धोती पाप को।
यह मेघमाला सींचती जो पुण्यरूप अनाज को।।८२।।

जो (समिति) मुनियों को शील का (-चारित्र का) मूल है, जो त्रस जीवों के घात से तथा स्थावर जीवों के घात से समस्त प्रकार से दूर है, जो भवदावानल के परितापरूपी क्लेश को शान्त करनेवाली तथा समस्त सुकृतरूपी धान्य की राशि को (पोषण देकर) सन्तोष देने वाली मेघमाला है, ऐसी यह समिति जयवन्त है।

शील अर्थात् चारित्र। मुनियों को अरागी, अकषायी चारित्र प्रकट हुआ है उसकी मूल यह समिति है। मुनियों को, जिसमें त्रस-स्थावर जीवों के हनन करने का विकल्प ही नहीं उठता, ऐसे ज्ञाता-दृष्टास्वभाव में रमणता प्रगट हुई है। उनको इस स्वभाव में रमणतारूप निश्चय-समिति होने के कारण त्रसादि के घात का विकल्प नहीं उठता, अतः वह समिति त्रसादि के घात से अर्थात् ऐसे विकल्प से समस्त प्रकार से दूर है – ऐसा कहा है। पुनः, ज्ञानानन्द आत्मा में वीतराग परिणाम होने पर, भवदावानल-रागद्वेषादि क्लेश उत्पन्न नहीं होते, अतः इस समिति को भवदावानल के परितापरूपी क्लेश को शान्त करनेवाला कहा है। पुनः, यह समिति वीतरागीस्वभाव के आचरणस्वरूप सुकृतरूपीधान्य को पोषण प्रदान करने वाली मेघमाला है।

मन, वाणी, देह से रहित तथा शुभाशुभ राग से रहित अन्तरस्वरूप में – वीतरागी स्वभाव में रमणता करना समिति है और वह समिति जयवन्त है।

ऐसी समिति आंशिकरूप से श्रावकदशा में भी कही गई है। मुनि को समिति आदि जो कहे गए हैं, वे सब श्रावक को भी आंशिक होते हैं। – ऐसा पुरुषार्थसिद्धयुपाय में कहा है। श्रावक को भी विकल्प तोड़कर स्वरूपरमणता की आंशिक प्रकटता होती है; उसके जितना राग है – पुण्य का विकल्प है, वह बन्ध का कारण है।

वह समिति मेरे आत्मा में जयवन्त वर्तती है। मुनि को शास्त्र लिखते समय राग है, विकल्प है, वह बन्ध का कारण है; तथापि उनके अन्तरस्वभाव में रमणता – समिति वर्तती है, वही जयवन्त है। मुनिराज लिखते समय चलते नहीं – बाह्य ईर्यासमिति में नहीं हैं तो भी अपने स्वभावमार्ग में चलनेरूप ईर्यासमिति उनको जयवन्त वर्तती है।

(मालिनी)

नियतमिह जनानां जन्म जन्मार्णवेऽस्मिन्
समितिविरहितानां कामरोगातुराणाम्।
मुनिप कुरु ततस्त्वं त्वन्मनोगेहमध्ये
ह्यपवरकममुष्याश्चारुयोषित्सुमुक्तेः ।।८३।।

(हरिगीत)

समिति विरहित काम रोगी जनों का दुर्भाग्य यह।
संसार-सागर में निरंतर जन्मते-मरते रहें।।

हे मुनिजनो! तुम हृदयघर में सावधानी पूर्वक।
जगह समुचित सदा रखना मुक्ति कन्या के लिए ।।८३।।

यहाँ (विश्व में) यह निश्चित है कि इस जन्मार्णव में (भव-सागर में) समितिरहित कामरोगातुर (-इच्छारूपी रोग से पीड़ित) जनों का जन्म होता है। इसलिये हे मुनि! तू अपने मनरूपी घर में इस सुमुक्तिरूपी सुन्दर स्त्री के लिये निवासगृह रख अर्थात् तू मुक्ति का चिंतवन कर।

जो जीव अन्तरचैतन्यस्वभाव के भानसहित स्वरूपरमणता में नहीं प्रवर्तता वह इच्छारूपी रोग से पीड़ित है, वह वीतराग मार्ग का आदर नहीं करता, उसको जन्मार्णव अर्थात् जन्म-मरण के वन में भ्रमण करना पड़ता है। अतः हे मुनि! तू अपने चैतन्यरूपी गृह में – अन्तर में सुमुक्तिरूपी सुन्दर रमणी के लिए स्थान रख। अन्दर एकाग्रता करने के लिए निवृत्ति रख और प्रवृत्ति छोड़। 'मैं ज्ञाता दृष्टा हूँ' ऐसे स्वभाव में रमणता करने का नाम सच्ची समिति है। देखकर चलना - ऐसे विकल्प की तो यहाँ बात ही नहीं है। यहाँ तो मुख्यरूप से मुनि की बात है। जिसको आत्मा का अनुभव हुआ है - ऐसे पंचम गुणस्थानवाले श्रावक को भी यह समिति आंशिक होती है। छठे गुणस्थान वालों को भी वहाँ से आगे बढ़कर उग्ररूप से अन्तर रमणता होती है। अधिक उग्रता के लिए यहाँ भावना की बात कही है।

(आर्या)

निश्चरूपां समितिं सूते यदि मुक्तिभाग्भवेन्मोक्षः।
बत न च लभतेऽपायात् संसारमहार्णवे भ्रमति ।।८४।।

(दोहा)

जो पाले निश्चय समिति, निश्चित मुक्ति जान।
समिति भ्रष्ट तो नियम से भटके भव के माँहि ।।८४।।

यदि जीव निश्चयरूप समिति को उत्पन्न करता है, प्राप्त करता है, धारण करता है तो वह मुक्ति को अवश्य प्राप्त करता है, मोक्षरूप होता है; परन्तु अरे रे समिति के नाश से, अभाव से मुक्ति को प्राप्त नहीं कर पाता, संसाररूप महासागर में भटकता रहता है, गोता लगाता रहता है।

अन्दर एकाग्रता – शान्ति उत्पन्न करे, स्वरूपरमणता को प्रकट करे तो वह जीव निश्चय से मुक्ति पाता है। किन्तु अरे रे! वह स्वभाव के भान बिना मोक्ष पाता नहीं; उसको चाहे जितनी जड़ की क्रिया अथवा शुभराग होता हो तो भी वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, संसार में ही भ्रमण करता है, चौरासी के अवतार में भटकता है। ●

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : दुःख का वेदन तो पुद्गल की पर्याय है न ?

उत्तर : किसने कहा कि पुद्गल की पर्याय है? वह तो जीव की ही पर्याय है, दुःख का वेदन जीव की पर्याय में होता है। यह जीव में से निकल जाता है; अतः जीव का स्वभाव नहीं है तथा पुद्गल के लक्ष्य से होता है; इसलिये द्रव्यदृष्टि कराने के प्रयोजन से उसको पुद्गल की पर्याय कहा गया है; किन्तु दुःख का वेदन तो जीव की पर्याय में ही होता है, पुद्गल में नहीं।

प्रश्न : पर्याय द्रव्य को तन्मय होकर जानती है अथवा अतन्मय रहकर जानती है?

उत्तर : पर्याय अतन्मय रहकर द्रव्य को जानती है। पर्याय द्रव्य में तन्मय होती है, यह तो जब पर्याय द्रव्य के सन्मुख होती है, तब तन्मय हुई - ऐसा कहने में आता है। अज्ञानदशा में राग के सन्मुख पर्याय थी, इसलिए उससमय उसे राग से तन्मय कहा जाता है और जब पर्याय द्रव्य के सन्मुख हुई तो उसे द्रव्य से तन्मय कहा जाता है; किन्तु तन्मय का अर्थ पर्याय द्रव्य में मिलकर एक हो जाती है - ऐसा नहीं है। पर्याय तो पर्याय में रहकर द्रव्य को जानती है। पर्याय, पर्याय से है और द्रव्य, द्रव्य से है। परद्रव्य से भिन्नता सिद्ध करनी हो तब ऐसा कहते हैं कि पर्याय से द्रव्य जुदा नहीं है, किन्तु जब एक वस्तु के दो धर्म सिद्ध करने हों तो पर्याय से द्रव्य भिन्न है - ऐसा समझना। जब जिस अपेक्षा से कहने का जो आशय हो उसे यथायोग्य समझना चाहिये।

प्रश्न : पर्याय को परद्रव्य की अपेक्षा नहीं है, यह तो ठीक है। क्या पर्याय को स्वद्रव्य की अपेक्षा भी नहीं ?

उत्तर : छहों द्रव्य की पर्यायें जिससमय होनी हैं, वे पर्यायें षट्कारक की क्रिया से स्वतन्त्रतया अपने जन्मक्षण में होती हैं। उन्हें अन्यद्रव्य की तो अपेक्षा बिल्कुल है ही नहीं और वास्तव में देखा जाय तो उन्हें स्वद्रव्य की भी अपेक्षा नहीं है। प्रत्येक द्रव्य में पर्याय का जो जन्मक्षण है, उसी जन्मक्षण में क्रमबद्धपर्याय होती है। ऐसी

स्वतन्त्रता की बात जगत की प्रतीति में आना कठिन है।

प्रश्न : द्रव्य में पर्याय नहीं है तो फिर पर्याय को गौण क्यों कराया जाता है?

उत्तर : द्रव्य में पर्याय नहीं है; जो वर्तमान प्रकट पर्याय है - वह पर्याय, पर्याय में है। सर्वथा पर्याय है ही नहीं - ऐसा नहीं है। पर्याय है उसकी उपेक्षा करके, गौण करके, है नहीं - ऐसा कहकर, पर्याय का लक्ष छुड़ाकर; द्रव्य का लक्ष और दृष्टि कराने का प्रयोजन है। इसलिये द्रव्य को मुख्य करके, भूतार्थ कहकर उसकी दृष्टि कराई है और पर्याय की उपेक्षा करके, गौण करके, पर्याय नहीं है, असत्यार्थ है - ऐसा कहकर उसका लक्ष छुड़ाया है। यदि पर्याय सर्वथा ही न होवे तो उसके गौण करने का प्रश्न ही कहाँ से हो ?

पहले वस्तु का अस्तित्व स्वीकार करके ही उसकी गौणता बन सकती है। इसप्रकार द्रव्य और पर्याय दोनों मिलकर ही पूर्ण द्रव्य कहलाता है और वह प्रमाणज्ञान का विषय है।

प्रश्न : शास्त्र में कहीं तो आता है कि पर्याय का उत्पादक द्रव्य है और कहीं आता है कि पर्याय स्वयं सत् है उसे द्रव्य की अपेक्षा नहीं, सो किसप्रकार है - समझाइये ?

उत्तर : वास्तव में पर्याय पर्याय से ही अर्थात् अपने से ही है। उसे पर की अपेक्षा तो है ही नहीं और वास्तव में अपने द्रव्य की भी अपेक्षा पर्याय को नहीं है। जब पर्याय की उत्पत्ति सिद्ध करनी हो तो 'द्रव्य से पर्याय उत्पन्न हुई' - ऐसा कहा जाता है, किन्तु जब पर्याय 'है' - इसप्रकार उसकी अस्ति सिद्ध करनी हो तब पर्याय है वह अपने से सत्‌रूप है, है, और है, उसको द्रव्य की भी अपेक्षा नहीं। अत: जहाँ जो अपेक्षा सिद्ध करनी हो, वहाँ वही अर्थ निकालना चाहिये।

आगामी कार्यक्रम...

चैतन्यधाम (गुज.) : यहाँ दिनांक 3 से 8 मई तक 25वें बाल शिक्षण शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

इस अवसर पर चैतन्य विद्या निकेतन में प्रवेश प्रक्रिया भी संपन्न होगी। प्रवेश फार्म भरने की अन्तिम तिथि 10 अप्रैल है। इस विद्यालय में कक्षा 8 से अंग्रेजी व गुजराती माध्यम में प्रवेश दिया जायेगा। संपर्क सूत्र - सचिन जैन, मो. 09409274126

समाचार दर्शन -

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धांत महाविद्यालय में अन्तिम वर्ष के छात्रों का -

विदाई समारोह संपन्न

जयपुर (राज.) : ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 1 मार्च को श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के शास्त्री तृतीय वर्ष के छात्रों का विदाई समारोह संपन्न हुआ। इस प्रसंग पर प्रात: पंचतीर्थ जिनालय पर जिनेन्द्र पूजन और रात्रि में भव्य जिनेन्द्र भक्ति का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर शास्त्री द्वितीय वर्ष के विद्यार्थियों द्वारा आयोजित दो सत्रों के विदाई समारोह में प्रथम सत्र के अध्यक्ष पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल तथा मुख्य अतिथि तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल एवं द्वितीय सत्र के अध्यक्ष पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील थे। विशिष्ट अतिथि के रूप में पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, पण्डित सोनूजी शास्त्री जयपुर, पण्डित गोम्मटेशजी शास्त्री जयपुर, पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री जयपुर, श्रीमती कमला भारिल्ल, श्रीमती गुणमाला भारिल्ल, कु. प्रतीति पाटील इत्यादि महानुभाव मंचासीन थे।

कार्यक्रम में शास्त्री तृतीय वर्ष के सभी विद्यार्थियों ने अपने अनुभव सुनाते हुए महाविद्यालय को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्या अध्ययन का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र बताया तथा महाविद्यालय में अपना स्वर्ण युग व्यतीत हुआ बताते हुये स्वयं को सौभाग्यशाली बताया। साथ ही सभी विद्यार्थियों ने जीवनपर्यंत स्वाध्याय एवं तत्त्वप्रचार का संकल्प भी लिया।

महाविद्यालय के प्राचार्य पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि जिनवाणी को पढकर, पढाकर अपने जीवन में उतारना ही वास्तविक लाभ है। यही मुक्ति प्राप्ति का कारण है।

श्री परमात्मप्रकाशजी ने कहा कि अपना विजन आपके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव है क्योंकि आज तक आप एक अतिसंरक्षित माहौल में रह रहे हैं और अब कल से आपको खुले आकाश की चुनौतियों से रूबरू होना है। पण्डित शांतिकुमारजी ने कहा कि तीन सकार स्वाध्याय, सामन्जस्य व संतोष जीवन में होना इस विद्या का विशेष लाभ है।

अंत में शास्त्री तृतीय वर्ष के सभी छात्रों को फोटो, श्रीफल और डॉ. भारिल्ल व पण्डित रतनंचदजी भारिल्ल के अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंटकर सम्मानित किया गया। सभी मंचासीन महानुभावों ने शास्त्री तृतीय वर्ष के विद्यार्थियों को मार्गदर्शन देते हुये उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनायें दीं।

अष्टाह्निका महापर्व सानन्द संपन्न

अजमेर (राज.) : यहाँ वैशाली नगर स्थित ऋषभायतन-अध्यात्मधाम के नवनिर्मित जिनमंदिर में अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर द्वारा विधान के विशिष्ट छंदों का अर्थ किया गया और पुरानी मंडी के सीमंधर जिनालय में मोक्षमार्ग प्रकाशक पर प्रवचन व दोपहर में कक्षा का लाभ मिला।

विधि-विधान का समस्त कार्य पण्डित कान्तिकुमारजी इन्दौर द्वारा संपन्न हुआ।

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं विधान संपन्न

पोन्नूरमलै (तमिलनाडु) : यहाँ अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर आचार्य कुन्दकुन्द जैन संस्कृति सेन्टर में आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं श्री पंचमेरु-नंदीश्वर मण्डल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित चेतनभाई मेहता राजकोट, पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर आदि विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला। रात्रि में आध्यात्मिक चर्चा के अतिरिक्त ज्ञानवर्धक सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये। कार्यक्रम में लगभग 250 साधर्मियों ने लाभ लिया।

समापन के अवसर पर श्री अनंतराय ए.शेठ एवं श्रीमती कनकबेन शेठ मुम्बई ने सभी साधर्मियों को मंगल वाणी सी.डी. प्रदान की।

विधान के समस्त कार्य पण्डित विरागजी शास्त्री ने संपन्न कराये। **– राजीव जैन**

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

2 से 6 अप्रैल	विदिशा (म.प्र.)	पंचकल्याणक
12 अप्रैल	दिल्ली	उपकार दिवस व मुमुक्षु मण्डल दिल्ली का स्वर्ण जयंती समारोह
17 से 21 अप्रैल	मंगलायतन	गुरुदेवश्री जयन्ती
26 अप्रैल से 2 मई	सोलापुर	इन्द्रध्वज विधान
17 से 22 मई	पारले (मुम्बई)	पंचकल्याणक
24 मई से 10 जून	मेरठ	प्रशिक्षण-शिविर
11 जून से 15 जुलाई	विदेश	तत्त्वप्रचारार्थ

टोडरमल महाविद्यालय का सुयश

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय लाडनूँ के तत्त्वावधान में संपर्क **(A National Graduate Conference)** सेमिनार में दिनांक 23 व 24 फरवरी को वाद-विवाद, निबन्ध व सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इन सभी प्रतियोगिताओं में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने गौरवपूर्ण प्रदर्शन करते हुए सभी प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त किये। ज्ञातव्य है कि इन प्रतियोगिताओं में अनेक शास्त्री विद्यालयों के विद्यार्थी सम्मिलित हुये थे। सभी प्रतियोगिताओं का विस्तृत परिणाम निम्नानुसार है –

(1) वाद-विवाद प्रतियोगिता – 'आधुनिक जैन युवाओं में जैन जीवन-शैली की प्रासंगिकता' पक्ष से प्रथम स्थान मयंक जैन ठगन टीकमगढ विपक्ष से प्रथम स्थान अनुभव जैन सिलवानी ने प्राप्त किया।

(2) निबन्ध प्रतियोगिता – 'जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन की वर्तमान में प्रासंगिकता' प्रथम स्थान मयंक जैन टीकमगढ ने प्राप्त किया।

(3) सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता – प्रथम स्थान पवन जैन मुम्बई, द्वितीय स्थान नरेश जैन भगवां एवं तृतीय स्थान सौरभ जैन ने प्राप्त किया।

महाविद्यालय के आदर्श पुरस्कार

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 1 मार्च को श्री टोडरमल दि.जैन सिद्धांत महाविद्यालय के अन्तिम वर्ष के छात्रों के विदाई समारोह के अन्तर्गत महाविद्यालय के इस सत्र (2014-15) के विशिष्ट पुरस्कारों की घोषणा की गई।

इस अवसर पर विद्यालय की पाँचों कक्षाओं में आदर्श कक्षा का पुरस्कार **उपाध्याय वरिष्ठ** कक्षा को तथा आदर्श विद्यार्थी का पुरस्कार **अच्युतकांत जैन (शास्त्री द्वितीय वर्ष)** को दिया गया। इसके अतिरिक्त कक्षा के आदर्श छात्र के रूप में उपाध्याय कनिष्ठ से **सोमिल जैन दलपतपुर,** उपाध्याय वरिष्ठ से **अमन जैन दिल्ली,** शास्त्री प्रथम वर्ष से **चर्चित जैन खनियांधाना,** शास्त्री द्वितीय वर्ष से **सौरभ जैन 'फूप'** और शास्त्री तृतीय वर्ष से **शुभम हाथगिने हुपरी** को पुरस्कृत किया गया।

मंगल सूचना

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी के हस्तलिखित ग्रंथ मोक्षमार्गप्रकाशक की प्रतिकृति अब ताम्रपत्र पर लाने का कार्य प्रगति पर है। आशा है यह कार्य इस वर्ष के अन्त तक पूर्ण हो जायेगा। यह कार्य पण्डित मनोजकुमारजी जैन (चीनी वाले) मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) के कुशल निर्देशन व देखरेख में हो रहा है। ज्ञातव्य है कि इससे पूर्व पाँचों परमागम व तत्त्वार्थसूत्र का कार्य पूर्ण होकर ग्रंथ विराजमान हो चुके हैं।

वीतराग-विज्ञान के स्वामित्व का विवरण (फार्म 4 नियम नं. 8)

समाचार पत्र का नाम	:	वीतराग-विज्ञान (हिन्दी)
प्रकाशन स्थान	:	श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-15 (राज.)
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
प्रकाशक एवं मुद्रक	:	ब्र. यशपाल जैन (भारतीय) द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम.आई.रोड, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।
सम्पादक का नाम	:	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (भारतीय) श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)
स्वामित्व	:	पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15

मैं ब्र. यशपाल जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं। – प्रकाशक : **ब्र. यशपाल जैन**

दिनांक 26-3-2015 ट्रस्टी, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द संपन्न

काटोल (महा.) : यहाँ जिनमंदिर में श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल ट्रस्ट काटोल के तत्त्वावधान में दिनांक 22 फरवरी को वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव एवं पंचपरमेष्ठी विधान आयोजित किया गया।

इस अवसर पर डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर एवं ब्र. श्रेणिकजी जबलपुर के प्रवचनों का लाभ मिला। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. राकेशजी शास्त्री, श्री नरेशजी सिंघई, श्री राजेन्द्रजी मोदी आदि महानुभाव उपस्थित थे। प्रतिमा भेंटकर्ता श्री राहुलजी जैन नागपुर, प्रतिमा विराजमानकर्ता श्री शांतिनाथजी मांगुलकर के सुपुत्र पण्डित नंदकिशोरजी मांगुलकर थे।

विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. श्रेणिकजी जबलपुर एवं पण्डित मनीषजी सिद्धांत नागपुर द्वारा संपन्न हुये। संपूर्ण कार्यक्रम का निर्देशन और संचालन पण्डित नंदकिशोरजी मांगुलकर ने किया। **– सौ. शुभांगी मांगुलकर**

मेरठ में बालकों हेतु विशेष कक्षायें

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित 49वें शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर मेरठ (उ.प्र.) में दिनांक 24 मई से 10 जून तक बाल मनोविज्ञान की विशेषज्ञा एवं विविध बाल साहित्य की रचयिता डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया, मुम्बई द्वारा बालकों के लिये विशेष कक्षाओं का आयोजन किया जायेगा। अधिक से अधिक बालक इस अवसर का लाभ लेवें।

शिलान्यास, ज्ञानगोष्ठी एवं विधान संपन्न

द्रोणगिरि-छतरपुर (म.प्र.) : यहाँ श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट द्रोणगिरि के तत्त्वावधान में स्वाध्याय भवन का शिलान्यास, ज्ञानगोष्ठी एवं चौंसठ ऋद्धि विधान का आयोजन दिनांक 7 से 11 मार्च तक किया गया।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त ब्र.रवीन्द्रजी आत्मन, ब्र.सुमतप्रकाशजी, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी, पण्डित रमेशजी दाऊ, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, ब्र. नन्हे भैया सागर, पण्डित सुरेशजी टीकमगढ आदि विद्वानों का समागम मिला।

कार्यक्रम में मुख्य शिलान्यासकर्त्ता श्री विमलकुमारजी जैन नीरु केमिकल दिल्ली थे। अन्य शिलान्यासकर्ता डॉ. वासंतीबेन शाह मुम्बई एवं श्री विजयभाई दादर थे। इस प्रसंग पर देशभर से 700-800 साधर्मियों ने लाभ लिया। विधान के समस्त कार्य ब्र. महेन्द्रजी शास्त्री इन्दौर ने संपन्न कराये।

क्रमबद्धपर्याय पर सेमिनार संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 8 मार्च को श्री शिखर जैन शास्त्री की स्मृति में गठित 'शिखर श्रुत-संवर्धन समिति' जयपुर के तत्त्वावधान में द्वितीय वार्षिक व्याख्यानमाला के अन्तर्गत जैनदर्शन के अद्भुत सिद्धांत **क्रमबद्धपर्याय** विषय पर सेमिनार का आयोजन हुआ।

समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में भगवान महावीर विकलांग समिति के चैयरमेन श्री डी.आर. मेहता उपस्थित थे।

इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल एवं डॉ. संजीवकुमारजी गोधा के क्रमबद्धपर्याय पर मार्मिक व्याख्यान का लाभ मिला। समारोह की अध्यक्षता श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी (पूर्व अध्यक्ष-राजस्थान जैनसभा) ने की।

कु.प्रतीति पाटील द्वारा किये गये मंगलाचरण के उपरांत सभी अतिथियों का परिचय डॉ. सनतकुमारजी जैन ने दिया। कार्यक्रम का सफल संचालन डॉ. भागचन्दजी शास्त्री ने एवं आभार प्रदर्शन पण्डित संजयजी सेठी ने किया। **– संजय शास्त्री बड़ामलहरा, संयोजक**

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –

वेबसाईट – www.vitragvani.com

संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

क्यों लें महाविद्यालय में प्रवेश ?

1. श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय का सन् 1977 से 37 वर्षों का गौरवशाली इतिहास है।
2. यहाँ पूर्णत: धार्मिक परिवेश मिलता है, जिससे बालक संस्कारशील धर्मनिष्ठ बन जाते हैं।
3. डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, पण्डित पीयूषजी शास्त्री, पण्डित सोनूजी शास्त्री, पण्डित गोम्मटेश्वरजी चौगुले, पण्डित ई.जिनकुमारजी शास्त्री आदि अनेक विद्वानों के सान्निध्य में सतत् प्रशिक्षण से जैनतत्त्वज्ञान/दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान बनते हैं।
4. पूरे देश में धार्मिक अवसरों पर प्रवचन/विधान आदि कार्यों के निमित्त भ्रमण के अवसर के साथ-साथ समाज के साथ रहने का प्रायोगिक ज्ञान सीखने को मिलता है।
5. जैनदर्शन के विद्वान होने से स्व के कल्याण के साथ-साथ अपने परिवार-समाज के कल्याण में निमित्त होते हैं।
6. छात्रावास में रहने से अपने हिताहित का स्वयं निर्णय करने की सामर्थ्य प्रगट होती है।
7. यहाँ विभिन्न प्रान्तों के छात्रों के साथ रहकर पूरी भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त करने का अवसर मिलता है।
8. महाविद्यालय के छात्र औसतन प्रतिवर्ष राजस्थान बोर्ड तथा विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में मैरिट में स्थान प्राप्त करते हैं।
9. संस्कृत भाषा में शास्त्री (बी.ए.) की डिग्री राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय की होने से अपेक्षाकृत रोजगार के अधिक उन्नत अवसर उपलब्ध होते हैं।
10. दर्शन व संस्कृत विषय के साथ आई.ए.एस. जैसी राष्ट्रीय प्रतियोगी परीक्षा व आर.ए.एस. आदि प्रान्तीय प्रतियोगी परीक्षाओं में उत्तीर्णता के अवसर प्राप्त होते हैं।
11. छात्रों की वक्तृत्वशैली, तर्कशैली एवं अध्ययनशीलता का विशेष विकास होता है, जिससे छात्र अन्य क्षेत्रों में भी सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

इसप्रकार श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश पाकर आपके बालक का सर्वांगीण विकास होता है। वह अपने और अपने परिवार, समाज की उन्नति में निमित्त होता है। जैनदर्शन का विद्वान बनकर स्व-पर कल्याण के सम्पादन हेतु अग्रसर होता है।

क्या आप नहीं चाहते कि आपका बालक भी ऐसा हो ? यदि हाँ.. तो महाविद्यालय में प्रवेश हेतु बालक को **दिनांक 24 मई से 10 जून 2015 तक मेरठ** में आयोजित शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में अवश्य भेजें। **– सोनू शास्त्री (9785643277)**

फॉर्म मंगाने का पता : श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015, फोन-0141-2705581, 2707458

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित एवं
अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, मेरठ द्वारा आयोजित

49वाँ वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर

दिनांक 24 मई 2015 से 10 जून 2015 तक

- आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के भवतापहारी सी.डी. प्रवचन का प्रसारण।
- डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी, ब्र.जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली, पण्डित राजेन्द्रजी जबलपुर इत्यादि अनेक आत्मार्थी विद्वानों का भरपूर लाभ।
- ज्ञान-वैराग्य-अध्यात्म से भरे हुए आध्यात्मिक सांस्कृतिक कार्यक्रम।
- अत्यन्त भक्ति और उत्साह के साथ चौबीस तीर्थंकर विधान का मनोहारी आयोजन।
- श्रीजी एवं जिनवाणी की भव्य व विशाल शोभा यात्रा।
- निकटवर्ती तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर, मंगलायतन, मथुरा, चौरासी, बड़ागाँव इत्यादि की यात्रा का सहज लाभ।
- देशभर के अलग-अलग प्रान्तों से पधार रहे साधर्मीजनों का मेला।
- श्री टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश लेने हेतु अपूर्व अवसर।

आप सभी को शिविर में पधारने हेतु हार्दिक आमंत्रण है।

हार्दिक अनुरोध :- 1. आवास आरक्षण हेतु आवास फार्म भरकर 30 अप्रैल तक जयपुर या मेरठ कार्यालय को अनिवार्य रूप से भिजवायें ताकि आपके आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था की जा सके। आवास फार्म मेरठ फैडरेशन की वेबसाइट www.jainyuvafedration.com पर जाकर डाउनलोड कर लें या निम्न संपर्क सूत्र से प्राप्त करें। 2. श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धांत महाविद्यालय हेतु छात्रों का चयन इसी प्रशिक्षण शिविर में होता है; अत: महाविद्यालय में प्रवेश हेतु अधिक से अधिक छात्रों को प्रेरणा देकर शिविर में भिजवायें।

संपर्क सूत्र -

श्री टोडरमल स्मारक भवन,
ए-4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.)
फोन-0141-2705581, 2707458;
Email - ptstjaipur@yahoo.com

सौरभ जैन (मंत्री), शिविर आयोजन समिति
नवकार टेक्सटाइल, 74, खंदक बाजार, मेरठ (उ.प्र.) फोन-09897241464;
आवास हेतु संपर्क –
अंबुज जैन, मोबा. 09837020293

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर एवं तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ के तत्त्वावधान में

श्री 1008 आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, विदिशा (म.प्र.)

कार्यक्रम स्थल : 'अयोध्या नगरी', कहान नगर, माँ विहार कॉलोनी, होमगार्ड रोड़

बुधवार, दिनांक 1 अप्रैल से सोमवार, 6 अप्रैल 2015 तक

आमंत्रण पत्रिका

प्रतिष्ठा महोत्सव ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री देवलाली के प्रतिष्ठाचार्यत्व में एवं पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा के निर्देशन में सम्पन्न होगा। महोत्सव में मंच निर्देशक पण्डित संजयकुमारजी शास्त्री मंगलायतन होंगे।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, पण्डित विमलचन्दजी झांझरी उज्जैन, पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जयपुर, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा आदि अनेक विद्वत्गण पधार रहे हैं।

1 अप्रैल-ध्वजारोहण	2 अप्रैल-गर्भकल्याणक	3 अप्रैल-जन्मकल्याणक
4 अप्रैल-दीक्षा कल्याणक	5 अप्रैल-केवलज्ञान कल्याणक	6 अप्रैल मोक्षकल्याणक।

महोत्सव में पधारने हेतु आप सभी को हार्दिक आमंत्रण है।

अध्यक्ष
श्री अजितप्रसादजी जैन दिल्ली

कार्याध्यक्ष
डॉ. आर.के.जैन विदिशा

महामंत्री
डॉ.मुकेशजी 'तन्मय' विदिशा

स्वागताध्यक्ष
श्री अनिलकुमारजी सेठी बैंगलोर
श्री पदमकुमारजी पहाड़िया इन्दौर

मार्गदर्शक
पं.अशोकजी लुहाड़िया मंगलायतन,
ब्र.अमित भैया विदिशा
पं.राकेशकुमारजी शास्त्री दिल्ली

संयोजक
पण्डित लालजीरामजी जैन विदिशा
श्री प्रमोदकुमारजी जैन विदिशा
डॉ. विनोदजी 'चिन्मय' विदिशा

-: संपर्क सूत्र :-

मोबा. 09425638251, 09407594996 E-mail : panchkalyanak.vds@gmail.com

जैन तत्त्वज्ञान अब रेडियो पर भी

● हिन्दी/गुजराती भाषा में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं अन्य विशिष्ट विद्वानों के प्रवचनों/भक्ति/बालकक्षा इत्यादि धार्मिक कार्यक्रमों का 24 घंटे 7 दिन प्रसारण।

● जैन रेडियो सुनने के लिए टाइप करें -
www.Jainmedialive.com; e-mail - info@jainmedialive.com

ढाईद्वीप जिनायतन में विराजमान होने वाली विश्व की सबसे बड़ी स्फटिक की 31 इंच की प्रतिमा का चित्र

R.N.I. No. 38278/83 Postal Regd. No. JaipurCity/421/2015-17

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष -

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

के आध्यात्मिक व्याख्यान

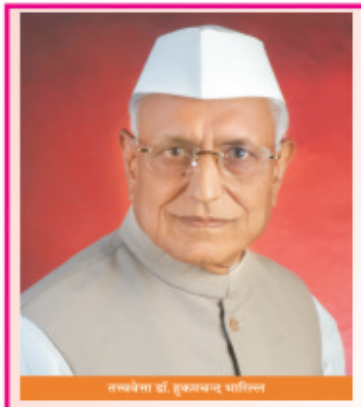

तत्त्वचेता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

जिनवाणी JINVANI

सुख, शान्ति, समृद्धि

जिनवाणी चैनल पर

अवश्य देखें

प्रतिदिन प्रात: 7:00 से 7:30 बजे तक

यह चैनल केबल के अतिरिक्त एयरटेल, वीडियोकॉन टी.वी. पर भी उपलब्ध है।

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- Pandit Todarmal
Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015